हमारे ज्योतिर्धर आचार्य

☐ श्री प्रतापमलजी महाराज (मेवाड़भूषण)

वीर निर्वाण के पश्चात् क्रमशः सुधर्मा प्रभृति देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण तक २७ ज्योतिर्धर आचार्य हुए हैं। जिनके द्वारा शासन की अपूर्व प्रभावना हुई। वीर सं० ९८० में सर्वप्रथम देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने भव्य-हितार्थ वीर-वाणी को लिपिबद्ध करके एक महत्त्वपूर्ण सेवा कार्य पूरा किया। तत्पश्चात् गच्छ-परम्पराओं का विस्तार होने लगा। विक्रम सं० १५३१ में "लोकागच्छ" की निर्मल कीर्ति देश के कौने-कौने में प्रसारित हुई। तत्सम्बन्धित आठ पाटानुपाट परम्पराओं का संक्षिप्त नामोल्लेख यहाँ किया गया है।

भाणजी ऋषि
भद्दा ऋषि
लूना ऋषि
भीमा ऋषि
जगमाल ऋषि
सखा ऋषि
रूपजी ऋषि
जीवाजी ऋषि

तत्पश्चात् अनेक साधक वृन्द ने क्रियोद्धार किया। जिनमें श्री जीवराजजी म० एवं हरजी मुनि विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके विषय में कुछ ऐतिहासिक तथ्य प्रसिद्ध हैं, जो नीचे अंकित किये गये हैं।

मरु प्रदेश (मारवाड़) के पीपाड़ नगर में वि० सं० १६६६ में यति तेजपालजी एवं कुंवरपालजी के ६ शिष्यों ने क्रियोद्धार किया। जिनके नाम—अमीपालजी, महीपालजी, हीराजी, जीवराजजी, गिरधारीलालजी एवं हरजी हैं। इनमें जीवराजजी, गिरधारीलालजी और हरजी स्वामी की शिष्य परम्परा आगे बढ़ी।

वि० सं० १६६६ में श्री जीवराजजी म० आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। उनके सात शिष्य हुए जो सभी आचार्य पद से अलंकृत थे जिनके नाम इस प्रकार हैं—

पूज्यश्री पूनमचन्दजी म०
पूज्यश्री नानकरामजी म०
पूज्यश्री शीतलदासजी म०
पूज्यश्री स्वामीदासजी म०
पूज्यश्री कुन्दनमलजी म०
पूज्यश्री नाथूरामजी म०
पूज्यश्री दौलतरामजी म०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोटा सम्प्रदाय आगे चलकर कई शाखाओं में विभक्त हुआ। जिनमें से एक शाखा के अग्रगण्य मुनि एवं आचार्यों की शुभ नामावली निम्न है—

श्री हरजी म० एवं जीवराजजी म०
पूज्यश्री गुलाबचन्दजी म० (गोदाजी म०)
पूज्यश्री फरसुरामजी म०
पूज्यश्री लोकपालजी म०
पूज्यश्री मयारामजी म० (महारामजी म०)
पूज्यश्री दौलतरामजी म०
पूज्यश्री लालचन्दजी म०
पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म०
पूज्यश्री शिवलालजी म०
पूज्यश्री उदयसागरजी म०
पूज्यश्री चौथमलजी म०
पूज्यश्री लालजी म०
पूज्यश्री मन्नालालजी म०
पूज्यश्री खूबचन्दजी म०
पूज्यश्री सहस्रमलजी म०

पूज्यश्री दौलतरामजी म० से पूर्व के पाँचों आचार्यों के विषय में प्रामाणिक तथ्य प्राप्त नहीं है। परन्तु आचार्य श्री दौलतरामजी म० से लेकर पूज्यश्री सहस्रमलजी म० सा० तक के आचार्यों की जो हमें ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है, वह क्रमशः दी जायगी।

आचार्य श्री दौलतरामजी म० सा०

जन्म—वि० सं० १८०१ कालापीपल गाँव में।
दीक्षा— ,, १८१४ फाल्गुन शुक्ला ५।
दीक्षागुरु—आ० श्री मयारामजी म०।
स्वर्गवास—वि० सं० १८६० पौष शुक्ला ६ रविवार उणियारा ग्राम में।

कोटा राज्य के अन्तर्गत "काला पीपल" गाँव व वगैरवाल जाति में आपका जन्म हुआ था। शैशव काल धार्मिक संस्कारों में बीता। विक्रम सं० १८१४ फाल्गुन शुक्ला ५ की मंगल वेला में क्रियानिष्ठ श्रद्धेय आचार्य श्री मयारामजी म० सा० के सान्निध्य में आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। प्रखर बुद्धि के कारण नव दीक्षित मुनि ने स्वल्प समय में ही रत्नत्रय की आशातीत अभिवृद्धि की। ज्ञान और क्रिया के सुन्दर संगम से जीवन उत्तरोत्तर उन्नतिशील होता रहा। फलस्वरूप संयमी-गुणों से प्रभावित होकर चतुर्विध संघ ने आप को आचार्य पद से शुभालंकृत किया।

मुख्य रूप से कोटा एवं पार्श्ववर्ती क्षेत्र आपकी विहार स्थली रही है। कारण कि—इन क्षेत्रों में धर्म-प्रचार की पूर्णतः कमी थी। भारी कठिनाईयों को सहन करके आपने उस कमी को दूर किया। खास कोटा में भी अत्यधिक परीषह सहन करने पड़े तथापि आप अपने प्रचार कार्य में संलग्न रहे। उच्चतम आचार-विचार के प्रभाव से काफी सफलता मिली। अतः सरावगी, माहेश्वरी अग्रवाल, पोरवाल, वगैरवाल एवं ओसवाल, इस प्रकार लगभग तीन सौ घरवालों ने आपके मुखारविन्द से गुरु आम्नाएँ स्वीकार कीं। इसी प्रकार बून्दी, बारा आदि क्षेत्र भी अत्यधिक प्रभावित हुए। फलस्वरूप आचार्यदेव का व्यक्तित्व और चमक उठा। बस मुख्य विहारस्थली होने के कारण कोटा सम्प्रदाय के नाम से प्रख्यात हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकदा शिष्य मण्डली सहित आचार्य प्रवर का दिल्ली में शुभागमन हुआ। उस वक्त वहाँ आगम मर्मज्ञ सुश्रावक दलपतसिंहजी ने केवल दशवैकालिक सूत्र के माध्यम से पूज्य प्रवर के समक्ष २२ आगमों का निष्कर्ष प्रस्तुत किया। जिस पर पूज्य प्रवर अत्यधिक प्रभावित हुए। लाभ यह हुआ कि पूज्यश्री का आगमिक अनुभव अधिक परिपुष्ट बना।

रत्नत्रय की प्रख्याति से प्रभावित होकर काठियावाड़ प्रान्त में विचरने वाले महा मनस्वी मुनिश्री अजरामलजी म० ने दर्शन एवं अध्ययनार्थ आपको याद किया। तदनुसार मार्गवर्ती क्षेत्रों में शासन की प्रभावना करते हुए आप लीमड़ी (गुजरात) पधारे।

शुभागमन की सूचना पाकर समकितसार के लेखक विद्वद्वर्य मुनिश्री जेठमलजी म० सा० का भी लीमड़ी पदार्पण हुआ। मुनित्रय की त्रिवेणी के पावन संगम से लीमड़ी तीर्थस्थली बन चुकी थी। जनता में हर्षोल्लास भक्ति की गंगा फूट पड़ी। पारस्परिक अनुभूतियों का मुनि मण्डल में काफी आदान-प्रदान हुआ। इस प्रकार शासन की श्लाघनीय प्रभावना करते हुए आचार्यदेव सात चातुर्मास उधर बिताकर पुनः राजस्थान में पधार गये।

जयपुर राज्य के अन्तर्गत "रावजी का उणियारा" ग्राम में आप धर्मोपदेश द्वारा जनता को लाभान्वित कर रहे थे।

उन्हीं दिनों दिल्ली निवासी सुश्रावक दलपतसिंहजी को रात्रि में स्वप्न के माध्यम से ऐसी ध्वनि सुनाई दी कि—"अब शीघ्र ही सूर्य ओझल होने जा रहा है।" निद्रा भंग हुई। तत्क्षण उन्होंने ज्योतिष-ज्ञान में देखा तो पता लगा कि—पूज्यप्रवर का आयुष्य केवल सात दिन का शेष है। अस्तु शीघ्र सेवा में पहुँचकर सचेत करना मेरा कर्तव्य है। ऐसा विचार का अविलम्ब उस गाँव पहुँचे, जहाँ आचार्यदेव विराज रहे थे।

शिष्यों ने आचार्यदेव की सेवा में निवेदन किया कि—दिल्ली के श्रावक चले आ रहे हैं।

पूज्यप्रवर ने सोचा—एकाएक श्रावकजी का यहाँ आना, सचमुच ही महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। मनोविज्ञान में पूज्य प्रवर ने देखा तो मालूम हुआ कि—इस पार्थिव देह का आयुष्य केवल सात दिन का शेष है। "शुभस्य शीघ्रम्" के अनुसार उस समय आचार्यदेव संथारा स्वीकार कर लेते हैं।

श्रावक दलपतसिंहजी उपस्थित हुए। "मत्थएण वंदामि" के पश्चात् कुछ शब्दोच्चारण करने लगे कि पूज्य प्रवर ने फरमा दिया—पुण्यला! आप मुझे सावधान करने के लिये यहाँ आये हो। वह कार्य अर्थात् जीवन पर्यन्त के लिये मैंने संथारा कर लिया है।

इस प्रकार काफी वर्षों तक शुद्ध संयमी जीवन के माध्यम से चतुर्विध संघ की खूब अभिवृद्धि करने के पश्चात् समाधिपूर्वक सं० १८६० पौष शुक्ला ६ रविवार के दिन आप स्वर्गस्थ हुए।

आचार्य श्री लालचंदजी महाराज

जन्म गांव— अंतड़ी (अंतरड़ा) १८वीं सदी में।

दीक्षा गुरु—आ० श्री दौलतरामजी म०।

स्वर्गवास—१८वीं सदी के अन्तिम वर्षों में।

आपकी जन्मस्थली बून्दी राज्य में स्थित "अन्तरड़ी" गाँव एवं जाति के आप सोनी थे। चित्रकला करने में आप निष्णात थे और चित्रकला ही आपके वैराग्य का कारण बनी।

एकदा अन्तरड़ा ग्राम के ठाकुर सा० ने रामायण सम्बन्धित चित्र भित्तियों पर बनाने के लिये आपको बुलाया। तदनुसार रंग-रोगन लगाकर चित्र अधिकाधिक चमकीले बनाये गये। पूरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तौर से रोगन सूख नहीं पाया था और बिना कपड़ा ढके वे चले गये। वापस आ करके देखा तो बहुत सी मक्खियाँ रोगन के साथ चिपककर प्राणों की आहुतियाँ दे चुकी थीं।

बस मन में ग्लानि उत्पन्न हुई। अन्तर्हृदय में वैराग्य की गंगा फूट पड़ी। विचारों की धारा में डूब गये—हाय! मेरी थोड़ी असावधानी के कारण भारी अकाज हो गया। अब मुझे दया ही पालना है। खोज करते हुए आचार्य श्री दौलतरामजी म० की सेवा में आये और उत्तमोत्तम भावों से जैन दीक्षा स्वीकार कर ली।

गुरु भगवंत की पर्युपासना करते हुए आगमिक ठोस ज्ञान का सम्पादन किया। सबल एव सफल शासक मान करके संघ ने आपको आचार्य पद पर आसीन किया। आपकी उपस्थिति में कोटा सम्प्रदाय में सत्तावीस पण्डित एवं कुल साधु-साध्वियों की संख्या २७५ तक पहुँच चुकी थी। इस प्रकार कोटा सम्प्रदाय के विस्तार में आपका श्लाघनीय योगदान रहा।

युगाचार्य श्री हुकमीचंदजी महाराज

जन्म गाँव—टोडा (जयपुर) १८वीं सदी में।

दीक्षाकाल—वि० १८७९ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की सातम।

दीक्षागुरु—आ० श्री लालचन्दजी म०।

स्वर्गवास—वि० सं० १९१७ वैशाख शुक्ला ५ मंगलवार।

आपका जन्म जयपुर राज्य के अन्तर्गत "टोंडा" ग्राम में ओसवाल गोत्र में हुआ था। पूर्व धार्मिक संस्कारों के प्रभाव से तथा यदा-कदा मुनि, महासती आदि के वैराग्योत्पादक उपदेशों के प्रभाव से आपका जीवन आत्म-चिन्तन में लीन रहा करता था।

एकदा पू० श्री लालचन्दजी म० सा० का बून्दी में शुभागमन हुआ और मुमुक्षु हुकमीचन्द जी का भी उन्हीं दिनों घरेलू कार्य वशात् बून्दी में आना हुआ था। वैराग्य वाहिनी वाणी का पान करके सम्वत् १८७९ मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में विशाल जनसमूह के समक्ष आचार्य श्री लाल-चन्दजी म० के पवित्र चरणों में दीक्षित हुए और बलिष्ठ योद्धा की भाँति नव दीक्षित मुनि रत्नत्रय की साधना में जुट गये। वस्तुतः आचार-विचार-व्यवहार के प्रभाव से संयमी जीवन सबल बना। व्याख्यान शैली शब्दाडम्बर से रहित सीधी-सादी सरल एवं वैराग्य से ओत-प्रोत भव्यों के मानस-स्थली को सीधी छूने वाली थी। आपके हस्ताक्षर अति सुन्दर आते थे। आज भी आप द्वारा लिखित शास्त्र निम्बाहेड़ा के पुस्तकालय की शोभा में अभिवृद्धि कर रहे हैं।

"ज्ञानाय, दानाय, रक्षणाय" तदनुसार स्वपर-कल्याण की भावना को लेकर आपने मालव धरती को पावन किया। शासन प्रभावना में आशातीत अभिवृद्धि हुई। सांधिक सुप्त शक्तियों में नई चेतना अंगड़ाई लेने लगी, नये वातावरण का सर्जन हुआ। जहाँ-तहाँ दया धर्म का नारा गूंज उठा और बिखरी हुई संघ शक्ति में पुनः एकता की प्रतिष्ठा हुई।

पूज्य प्रवर के शुभागमन से श्री संघों में काफी धर्मोन्नति हुई। जन-जन का अन्तर्मानस पूज्य प्रवर के प्रति सश्रद्धा नतमस्तक हो उठा चूंकि पूज्यश्री का जीवन तपोमय था। निरन्तर २१ वर्ष तक बेले-बेले की तपाराधना, ओढ़ने के लिये एक ही चद्दर का उपयोग, प्रतिदिन दो सौ "नमोत्थुण" का स्मरण करना, जीवन पर्यन्त सर्व प्रकार के मिष्ठानों का परित्याग और स्वयं के अधिकार में शिष्य नहीं बनाना आदि महान् प्रतिज्ञाओं के धनी पूज्यप्रवर का जीवन अन्य नर-नारियों के लिये प्रेरणादायक रहे, उसमें आश्चर्य ही क्या है? उसी उच्चकोटि की साधना के कारण चित्तौड़गढ़ में आपके स्पर्श से एक कुष्ट रोगी के रोग का अन्त होना, रामपुरा में आपकी मौजूदगी में एक वैरागिन बहिन के हाथों में पड़ी हथकड़ियों का टूटना और नाथद्वारा के व्याख्यान समवशरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में नभमार्ग से विचित्र ढंग के रुपयों की बरसात आदि-आदि चमत्कार पूज्यप्रवर के उच्चातिउच्च-कोटि के संयम का संस्मरण करवा रहे हैं।

अपनी प्रखर प्रतिभा, उत्कृष्ट चारित्र और असरकारक वाणी के कारण जनता के इतने प्रिय हो गये कि—भविष्य में आपके आज्ञानुगामी सन्त-सती समूह को जनता "पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म० सा० के सम्प्रदाय के" नाम से पुकारने लगी। इस प्रकार लगभग अड़तीस वर्ष पाँच मास तक शुद्ध संयम का परिपालन कर चारित्र चूड़ामणि श्रमण श्रेष्ठ पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म० सा० का वैशाख शुक्ला ५ संवत् १९१७ मंगलवार को जावद शहर में समाधिपूर्वक स्वर्गवास हुआ।

तत्पश्चात् सांघिक सर्व उत्तरदायित्व आपके गुरु भ्राता पूज्य श्री शिवलालजी म० को संभालना जरूरी हुआ, जिनका परिचय इस प्रकार है।

आचार्य श्री शिवलालजी महाराज साहब

जन्म गाँव—धामनिया (नीमच) १८वीं सदी में।

दीक्षा संवत्—१८९१।

दीक्षागुरु—आचार्य श्री लालचन्दजी म०।

स्वर्गवास—सं० १९३३ पौष शुक्ला ६ रविवार।

आपकी पावन जन्मस्थली मालवा प्रान्त में धामनिया (नीमच) ग्राम था। संवत् १८९१ में आपने दीक्षा अंगीकार की थी। स्व० पूज्य श्री हुकमीचन्दजी म० की तरह ही आप भी शास्त्रमर्मज्ञ, स्वाध्यायी व आचार-विचार में महान् निष्ठावान-श्रद्धावान थे। न्याय एवं व्याकरण विषय के अच्छे ज्ञाता के साथ-साथ स्व-मत पर-मत मीमांसा में भी आप कुशल कोविद माने जाते थे। आप यदा-कदा भक्ति भरे व जीवन स्पर्शी, उपदेशी कवित्त भजन लावणिया भी रचा करते थे। जो सम्प्रति पूर्ण साधनाभाव के कारण अप्रकाशित अवस्था में ही रह गये हैं।

आपके प्रवचन तात्त्विक विचारों से ओत-प्रोत जनसाधारण की भाव भाषा में ही हुआ करते थे। और सरल भाषा के माध्यम से ही आप अपने विचारों को जन-मन तक पहुँचाने में सफल भी हुए हैं। जिज्ञासुओं की शंकाओं का समाधान भी आप शास्त्रीय मान्यतानुसार अनोखे ढंग से किया करते थे। निरन्तर छत्तीस वर्ष तक एकान्तर तपाराधना कर कर्म कीट को धोने में प्रयत्नशील रहे थे। वे पारणे में कभी-कभी दूध, घी आदि विगयों का परित्याग भी किया करते थे। इस प्रकार काफी वर्षों तक शुद्ध संयम का परिपालन कर व चतुर्विध संघ की खूब अभिवृद्धि कर सं० १९३३ पौष शुक्ला ६ रविवार के दिन आप दिवंगत हुए। कुलाचार्य के रूप में भी आप विख्यात थे।

पूज्यप्रवर श्री उदयसागरजी महाराज

जन्म गाँव—जोधपुर सं० १८७६ पौष मास।

दीक्षा संवत्—१८९८ चैत्र शुक्ला ११।

दीक्षागुरु—मुनि श्री हर्षचन्दजी म०।

स्वर्गवास—सं० १९५४ माघ शुक्ला १३ रतलाम।

पूज्यश्री शिवलालजी म० सा० के दिवंगत होने के पश्चात् सम्प्रदाय की बागडोर आपके कर-कमलों में शोभित हुई।

आपका जन्म स्थान जोधपुर है। खिवेंसरा गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठी श्री नथमलजी की धर्म-पत्नी श्रीमती जीवाबाई की कुक्षि से सं० १८७६ के पौष मास में आपका जन्म हुआ। समयानुसार ज्ञानाभ्यास, कुछ अंशों में धन्धा, रोजगार भी सिखाया गया और साथ ही साथ लघु वय में ही आपका सगपण भी कर दिया गया था। वस्तुतः कुछ नैमित्तिक कारणों से और विकासोन्मुखी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन हो जाने के विवाह योजना को वहीं ठण्डी करके संयम ग्रहण करने का निश्चय कर लिया। दिनों-दिन वैराग्य भाव-सरिता में तल्लीन रहने लगे। येन-केन-प्रकारेण दीक्षा भावों की मन्द-मन्द महक उनके माता-पिता तक पहुँची। काफी विघ्न भी आये लेकिन आप अपने निश्चय पर सुदृढ़ रहे। काफी दिनों तक घर पर ही साध्वोचित आचार-विचार पालते रहे। अन्ततः खूब परीक्षा जाँच पड़ताल कर लेने के पश्चात् माता-पिता व न्याती-गोती सभी वर्ग ने दीक्षा की अनुमति प्रदान की।

महा मनोरथ-सिद्धि की उपलब्धि के पश्चात् पू० प्रवर श्री शिवलालजी म० के आज्ञानुगामी मुनि श्री हर्षचन्दजी म० के सान्निध्य में सं० १८९८ चैत्र शुक्ला ११ गुरुवार की शुभ बेला में दीक्षित हुए।

दीक्षा व्रत स्वीकार करने के पश्चात् पूज्य श्री शिवलालजी म० की सेवा में रहकर जैन सिद्धान्त का गहन अभ्यास किया। बुद्धि की तीक्ष्णता के कारण स्वल्प समय में व्याख्यान-वाणी व पठन-पाठन में श्लाघनीय योग्यता प्राप्त कर ली। सदैव आप आत्म-भाव में रमण किया करते थे। प्रमाद-आलस्य में समय को खोना; आपको अप्रिय था। सरल एवं स्पष्टवादिता के आप धनी थे। अतएव सदैव आचार-विचार में सावधान रहा करते थे व अन्य सन्त महन्तों को भी उसी प्रकार प्रेरित किया करते थे।

आपकी विहार स्थली मुख्यरूपेण मालवा और राजस्थान ही थी। किन्तु भारत में सुदूर तक आपके संयमी जीवन की महक व्याप्त थी। आपके ओजस्वी भाषणों से व ज्योतिर्मय जीवन के प्रभाव से अनेक इतर जनों ने मद्य, मांस व पशुबलि का जीवन पर्यन्त के लिये त्याग किया था और कई बड़े-बड़े राजा-महाराजा जागीरदार आपकी विद्वत्ता से व चमकते-दमकते चेहरे से आकृष्ट होकर यदा-कदा दर्शनों के लिये व व्याख्यानामृत-पान हेतु आया ही करते थे।

अन्य अनेक ग्राम नगरों को प्रतिलाभ देते हुए आप शिष्य समुदाय सहित रतलाम पधारे। पार्थिव देह की स्थिति दिनों-दिन ढलती जा रही थी। बस द्रुतगत्या मुख्य-मुख्य सन्त व श्रावकों की सलाह लेकर पूज्यप्रवर ने अपनी पैनी सूझ-बूझ से भावी आचार्य श्री चौथमलजी म० सा० का नाम घोषित कर दिया। चतुर्विध संघ ने इस महान् योजना का मुक्त कंठ से स्वागत किया। आपके शासनकाल में चतुर्विध संघ में आशातीत जागृति आई। इस प्रकार सम्बत् १९५४ माघ शुक्ला १३ के दिन रतलाम में पूज्य श्री उदयसागरजी म० सा० का स्वर्गवास हो गया।

पूज्यप्रवर श्री चौथमलजी महाराज

जन्म गांव—पाली (मारवाड़, राजस्थान)।
दीक्षा संवत्—१९०९ चैत्र शुक्ला १२।
दीक्षागुरु—आ० श्री शिवलालजी म०।
स्वर्गवास—१९५७ कार्तिक मास, रतलाम।

पूज्यप्रवर श्री उदयसागर जी म० के पश्चात् सम्प्रदाय की सर्व व्यवस्था आपके बलिष्ठ कंधों पर आ खड़ी हुई। आप पाली मारवाड़ के रहने वाले एक सुसम्पन्न ओसवाल परिवार के रत्न थे। आपकी दीक्षा तिथि १९०९ चैत्र शुक्ला १२ रविवार और आचार्य पदवी सम्वत् १९५४ मानी जाती है। पू० श्री उदयसागर जी म० को तरह आप भी ज्ञान, दर्शन, चारित्र के महान् धनी और उग्र विहारी तपस्वी सन्त थे। यद्यपि शरीर में यदा-कदा असाता का उदय हुआ ही करता था तथापि तप-जप स्वाध्याय व्याख्यान में रत रहा करते थे। अनेकानेक गुण-रत्नों से अलंकृत आपका जीवन अन्य भव्यों के लिए मार्गदर्शक था। आपकी मौजूदगी में भी शासन की समुचित सुव्यवस्था थी और पारस्परिक संगठन स्नेहभाव पूर्ववत् ही था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार केवल तीन वर्ष और कुछ महीनों तक ही आप समाज को मार्ग-दर्शन देते रहे और संवत् १९५७ कार्तिक शुक्ला ९वीं के दिन आपश्री का रतलाम में देहावसान हुआ।

आगमोदधि आचार्य श्री मन्नालालजी म० सा०

जन्म गांव—रतलाम वि० सं० १९२६।
दीक्षा संवत्—१९३८ आषाढ़ शुक्ला ९ मंगलवार रतलाम में।
दीक्षा गुरु—श्री रतनचन्दजी म० (लोद वाले)।
स्वर्गवास—१९९० आषाढ़ कृष्णा १२ सोमवार ब्यावर में।

संवत् १९२६ में पूज्यप्रवर का जन्म रतलाम में हुआ था। आपके पिताश्री का नाम अमरचन्दजी, मातेश्वरी का नाम नानीबाई था। आप बोहरा गोत्रीय ओसवाल थे। शैशव काल अति सुख शान्तिमय बीता।

पूज्यप्रवर श्री उदयसागरजी म० का पीयूषवर्षी उपदेश सुनकर श्रेष्ठी अमरचन्दजी और सुपुत्र श्री मन्नालालजी दोनों ही वैराग्य में प्लावित हो उठे। संवत् १९३८ आषाढ़ शुक्ला ९वीं मंगलवार को पूज्यप्रवर के कमनीय कर-कमलों द्वारा दीक्षित हुए और लोद वाले श्री रतनचन्दजी म० के नेश्राय में आप दोनों घोषित किये गये। दीक्षा के पश्चात् सुष्ठुरीत्या अभ्यास करने में लग गये। पूज्यश्री मन्नालालजी म० की बुद्धि अति शुद्ध-विशुद्ध-निर्मल थी। कहते हैं कि एक दिन में लगभग पचास गाथा अथवा श्लोक कंठस्थ करके सुना दिया करते थे। विनय, अनुभव, नम्रता और अनुशासन का परिपालन आदि-आदि गुणों से आपका जीवन आबालवृद्ध सन्तों के लिये प्रिय था। एतदर्थ पूज्य श्री उदयसागरजी म० ने दिल खोलकर पात्र को शास्त्रों का अध्ययन करवाया, गूढ़ातिगूढ़ शास्त्र कुँजियों से अवगत कराया और अपना अनुभव भी सिखाया। इस प्रकार शनैः शनैः गांभीर्यता, समता, सहिष्णुता, क्षमता आदि अनेकानेक गुणों के कारण आपका जीवन चमकता, दमकता, दीपता हुआ समाज के सम्मुख आया। आचार्य पद योग्य गुणों से समवेत समझकर चतुर्विध संघ ने संवत् १९७५ वैशाख शुक्ला १० के दिन जम्मू (काश्मीर) नगर में चारित्र चूड़ामणि पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म० सा० के "सम्प्रदाय" के "आचार्य" पद से आप (पू० श्री मन्नालालजी म०) श्री को विभूषित किया गया।

तत्पश्चात् व्याख्यान वाचस्पति पं० रत्न श्री देवीलालजी म०, प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म०, भावी आचार्य श्री खूबचन्दजी म० आदि अनेक सन्त शिरोमणि आपके स्वागत सेवा में पहुंचे और पुनः सर्व मुनि मण्डल का मालवा में शुभागमन हुआ। अनेक स्थानों पर आपके यशस्वी चातुर्मास हुए और जहाँ-जहाँ आचार्य प्रवर पधारे, वहाँ-वहाँ आशातीत धर्मोन्नति व दान, शील, तप, भावाराधना हुआ ही करती थी। अनेक मुमुक्षु आपके वैराग्योत्पादक उपदेशों को श्रवणगत कर आपके चारु-चरण सरोज में दीक्षित भी हुए हैं।

मालवा-राजस्थान व पंजाब प्रान्त के कई भागों में आपका परिभ्रमण हुआ। आपके तल-स्पर्शीज्ञान गरिमा की महक सुदूर तक फैली हुई थी। कई भावुक जन यदा-कदा सेवा में आ-आकर शंका समाधान पाया ही करते थे। श्रमण संघीय उपाध्याय श्री हस्तीमल जी म० सा० भी आपकी सेवा में रहकर शास्त्रीय अध्ययन कर चुके हैं।

इस प्रकार आप जहाँ तक आचार्य पद को सुशोभित करते रहे; वहाँ तक चतुर्विध संघ की चौमुखी उन्नति होती रही। संघ में नई जागृति और नई चेतना ने अंगड़ाई ली। सं० १९९० अजमेर का बृहद् साधु-सम्मेलन सम्पन्न कर आचार्य प्रवर वर्षावास व्यतीत करने हेतु ब्यावर नगर को धन्य बनाया। सहसा शरीर में रोग ने आतंक खड़ा कर दिया। तत्काल आसपास के अनेक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वरिष्ठ सन्त सेवा में पधार गये। अन्ततोगत्वा सं० १९९० आषाढ़ बदी १२ सोमवार के दिन आप स्वर्गवासी हुए।

आपके रिक्त पाट पर चारित्र-चूड़ामणि-त्यागी-तपोधनी पूज्य प्रवर श्री खूबचन्दजी म० सा० आसीन किये गये।

आदर्श त्यागी आचार्य प्रवर श्री खूबचन्दजी म० सा०

जन्म गाँव—निम्बाहेड़ा (राजस्थान) १९३० कार्तिक शुक्ला ८ गुरुवार।
दीक्षा संवत्—१९५२ अषाढ़ शुक्ला ३।
दीक्षा गुरु—वादीमान मर्दक श्री नन्दलालजी म०।
स्वर्गवास—सं० २००२ चैत्र शुक्ला ३ ब्यावर नगर में।

वि० सं० १९३० कार्तिक शुक्ला अष्टमी गुरुवार के दिन निम्बाहेड़ा (चित्तौड़गढ़) के निवासी श्रीमान टेकचन्दजी की धर्मपत्नी गेन्दीबाई की कुक्षि से आपका जन्म हुआ था। शैशवकाल सुखमय बीता, विद्याध्ययन हुआ और हो ही रहा था कि पारिवारिक सदस्यों ने अति शीघ्रता कर सं० १९४६ मार्गशीर्ष शुक्ला १५ के दिन विवाह भी कर दिया। बालक खूबचन्द शर्म के वजह से न नहीं कर सके। समयानुसार वास्तविक बातों का ज्यों-ज्यों ज्ञान हुआ, त्यों-त्यों खूबचन्द अपने जीवन को धार्मिक क्रियाकाण्ड अनुष्ठानों से पूरित करने लगे और उसी प्रकार सांसारिक क्रियाकलापों से भी दूर रहने लगे—जैसा कि—

वर्षों तक कनक रहे जल में, पर कायी कभी नहीं आती है।
यों शुद्धात्म जीव रहे विश्व में, नहीं मलीनता छाती है॥

बस विवाह के छह वर्ष पश्चात् अर्थात् १९५२ आषाढ़ शुक्ला ३ की शुभ वेला में वादीमान मर्दक गुरु प्रवर श्री नन्दलालजी म० सा० के नेश्राय में उदयपुर की रंगस्थली ने आप दीक्षित हुए।

दीक्षा के पश्चात, गुरु भगवंत श्री नन्दलाल जी म० सा० ने स्वयं आपको शास्त्रीय तलस्पर्शी अध्ययन करवाया, अपना निजी अनुभव और भी अनेकानेक उपयोगी सिखावनों से आपको होनहार बनाया। फलस्वरूप आपका जीवन दिनोंदिन महानता व विनय गुण से महक उठा। कई बार गुरु प्रवर श्री नन्दलालजी म० सा० अन्य मुमुक्षुओं के समक्ष फरमाया भी करते थे कि—श्री उत्तराध्ययनसूत्र के प्रथमाध्याय के अनुरूप खूबचन्द जी मुनि का जीवन विनय गुण गौरव से ओत-प्रोत है। यह कोई दर्पोक्ति नहीं है। क्योंकि—आप द्वारा रचित भजन, लावणियों में आपने अपना नाम सर्वथा गोपनीय रखा है। और गुरु भगवंत के नाम की ही मुहुर लगाई है, जैसाकि—"महा मुनि नन्दलाल तणांशिष्य" यह विशेषता आपके नम्रीभूत जीवन की ओर संकेत कर रही है।

आपका जीवन त्याग-वैराग्य से लबालब परिपूर्ण-सम्पूर्ण था। व्याख्यान वाणी में वैराग्य रस प्रधान था। स्वर अति मधुर व गायन कला सांगोपांग और आकर्षक थी। अतएव उपदेशामृत पान हेतु इतर जन भी उमड़-घुमड़ के आया करते थे। असरकारक वाणी प्रभावेण कई मुमुक्षु आपके नेश्राय में दीक्षित हुए थे। वर्तमान काल में स्थविर पद विभूषित ज्योतिर्धर पं० रत्न श्री कस्तूरचन्द जी म० सा० आपके ही शिष्यरत्न हैं। और हमारे चरित्रनायक आपके गुरु भ्राता व प्रवर्तक श्री हीरालाल जी म० सा० व तपस्वी श्री लाभचन्द जी म० सा० आपके प्रशिष्य हैं।

आपके अक्षर अति सुन्दर आते थे। इस कारण आपकी लेखन कला भी स्तुत्य थी। आप अपने अमूल्य समय में कुछ न कुछ लिखा ही करते थे। चित्रकला में भी आप निपुण थे। आज भी आपके हस्तलिखित अनेकों पन्ने सन्त मण्डली के पास मौजूद हैं। जो समय-समय पर काम में लिया करते हैं। आप कवि के रूप में भी समाज के सम्मुख आये थे। आप द्वारा रचित अनेक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भजन, दोहे व लावणियाँ आज भी साधक जिह्वा पर ताजे हैं। आपकी रचना सरल-सुबोध व भाव प्रधान मानी जाती है। शब्दों की दुरूहता से परे है। कहीं-कहीं आपकी कविताओं में अपने आप ही अनुप्रास अलंकार इतना रोचक बन पड़ा है कि गायकों को अति आनन्द की अनुभूति होती है और पुनः पुनः गाने पर भी मन अघाता नहीं है। जैसा कि—

यह प्रजम कुंवर जी प्रगट सुनो पुण्याई,
महाराज, मात रुक्मीणि का जाया जी।
जान भोग छोड़ लिया योग, रोग कर्मों का मिटाया जी।।"

सर्वगुणसम्पन्न प्रखर प्रतिभा के धनी समझकर चतुर्विध संघ ने सं० १९९० माघ शुक्ला १३ शनिवार की शुभ घड़ी मन्दसौर की पावन स्थली में पूज्य श्री हुकमीचन्द जी म० के सम्प्रदाय के आप आचार्य बनाये गये। आचार्य पद पर आसीन होने पर "यथानाम तथागुण" के अनुसार चतुर्विध संघ समाज में चौमुखी तरक्की प्रगति होती रही और आपके अनुशासन की परिपालना बिना दबाव के सर्वत्र-सश्रद्धा-भक्ति प्रेमपूर्वक हुआ करती थी। अतएव आचार्य पद पर आपके विराजने से सकल संघ को स्वाभिमान का भारी गर्व था।

आपके सर्व कार्य सन्तुलित हुआ करते थे। शास्त्रीय मर्यादा को आत्मसात करने में सदैव आप कटिबद्ध रहते थे। महिमा सम्पन्न विमल व्यक्तित्व समाज के लिए ही नहीं, अपितु जन-जन के लिए मार्ग दर्शक व प्रेरणादायी था। समतारस में रमण करना ही आपको अभीष्ट था। यही कारण था कि विरोधी तत्त्व भी आपके प्रति पूर्ण पूज्य भाव रखते थे।

मालवा, मेवाड़, मारवाड़, पंजाब व खानदेश आदि अनेक प्रान्तों में आपने पर्यटन किया था। जहाँ भी आप चरण-सरोज धरते थे, वहाँ काफी धर्मोद्योत हुआ ही करता था। चांदनी चौक दिल्ली के भक्तगण आपके प्रति अटूट-श्रद्धा-भक्ति रखते थे।

इस प्रकार सं० २००२ चैत्र शुक्ला ३ के दिन ब्यावर नगर में आपका देहावसान हुआ और आपके पश्चात् सम्प्रदाय के कर्णधार के रूप में पूज्य प्रवर श्री सहस्रमल जी म० सा० चुने गये।

आचार्य प्रवर श्री सहस्रमलजी महाराज साहब

जन्म गाँव—टाटगढ़ (मेवाड़) १९५२।
दीक्षा संवत्—१९७४ भादवा सुदी ५।
दीक्षा गुरु—श्री देवीलाल जी म०।
स्वर्गवास—२०१५ माघ सुदी १५।

आपका जन्म संवत् १९५२ टाटगढ़ (मेवाड़) में हुआ था। पीतलिया गोत्रीय ओसवाल परिवार के रत्न थे। अति लघुवय में वैराग्य हुआ और तेरापंथ सम्प्रदाय के आचार्य कालुराम जी के पास दीक्षित भी हो गये। साधु बनने के पश्चात् सिद्धान्तों की तह तक पहुँचे, जिज्ञासु बुद्धि के आप धनी थे ही और तेरापंथ की मूल मान्यताएँ भी सामने आईं—"मरते हुए को बचाने में पाप, भूखे को रोटी कपड़े देने में पाप, अन्य की सेवा-सुश्रूषा करना पाप" अर्थात्—दयादान के विपरीत मान्यताओं को सुनकर-समझकर आप ताज्जुब में पड़ गये। अरे! यह क्या? सारी दुनिया के धर्म मत पंथों की मान्यता दयादान के मण्डन में है और हमारे तेरापंथ सम्प्रदाय की मनगढ़न्त उपरोक्त मान्यता अजब-गजब की? कई बार आचार्य कालुजी आदि साधकों से सम्यक् समाधान भी माँगा लेकिन सांगोपांग शास्त्रीय समाधान करने में कोई सफल नहीं हुए। अतएव विचार किया कि इस सम्प्रदाय का परित्याग करना ही अपने लिए अच्छा रहेगा। चूंकि जिसकी मान्यता रूपी जड़ें दूषित होती हैं उसकी शाखा, प्रशाखा आदि सर्व दूषित ही मानी जाती हैं। बस सात वर्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक आप इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत रहे; फिर सदैव के लिए इस सम्प्रदाय को वोसिरा कर आप सीधे दिल्ली पहुँचे।

उस समय स्थानकवासी सम्प्रदाय के महान् क्रियापात्र विद्वद्वर्य मुनि श्री देवीलालजी म०, पं० रत्न श्री केशरीमलजी म० आदि सन्त मण्डली चाँदनी चौक दिल्ली में विराज रहे थे। श्री सहस्रमलजी मुमुक्षु ने दर्शन किये व दयादान विषयक अपनी वही पूर्व जिज्ञासा, शंका, ज्यों की त्यों वहाँ विराजित मुनि प्रवर के सामने रखी और बोले—"यदि मेरा सम्यक् समाधान हो जाएगा, तो मैं निश्चयमेव आपका शिष्यत्व स्वीकार कर लूँगा।" अविलम्ब मुनिद्वय ने शास्त्रीय प्रमाणोपेत सांगोपांग स्पष्ट सही समाधान कह सुनाया। आपको पूर्णतः आत्म-सन्तोष हुआ। उचित समाधान होने पर अति हर्ष सहित सं० १९७४ भादवा सुदी ४ की शुभ मंगल वेला में शुद्ध मान्यता और शुद्ध सम्प्रदाय के अनुयायी बने, दीक्षित हुए।

तत्त्वखोजी के साथ-साथ आपकी ज्ञान संग्रह की वृत्ति स्तुत्य थी। पठन-पाठन में भी आप सदैव तैयार रहते थे। ज्ञान को कंठस्थ करना आपको अधिक अभीष्ट था इसलिए ढेरों सवैये, लावणियाँ, श्लोक, गाथा व दोहे वगैरह आपकी स्मृति में ताजे थे। यदा-कदा भजन स्तवन भी आप रचा करते थे। जो धरोहर रूप में उपलब्ध होते हैं।

व्याख्यान शैली अति मधुर, आकर्षक, हृदयस्पर्शी व तात्त्विकता से ओत-प्रोत थी। चर्चा करने में भी आप अति पटु व हाजिर-जबावी के साथ-साथ प्रतिवादी को झुकाना भी जानते थे। जनता के अभिप्रायों को आप मिनटों में भाँप जाते थे। व्यवहार धर्म में आप अति कुशल और अनुशासक (Controller) भी पूरे थे।

सं० २००६ चैत्र शुक्ला १३ की शुभ घड़ी में नाथद्वारा के भव्य रम्य प्रांगण में आप "आचार्य" बनाये गये। कुछेक वर्षों तक आप आचार्य पद को सुशोभित करते रहे। तत्पश्चात् संघैक्य योजना के अन्तर्गत आचार्य पदवी का परित्याग किया और श्रमण संघ के मंत्री पद पर आसीन हुए। इसके पहिले भी आप सम्प्रदाय के "उपाध्याय" पद पर रह चुके हैं। इस प्रकार रत्नत्रय की खूब आराधना कर सं० २०१५ माघ सुदी १५ के दिन रूपनगढ़ में आपका स्वर्गवास हुआ।

पाठक वृन्द के समक्ष पूज्य प्रवर श्री हुक्मीचन्द जी म० सा० के सम्प्रदाय के महान् प्रतापी पूर्वाचार्यों की विविध विशेषताओं से ओत-प्रोत एक नन्हीं सी झाँकी प्रस्तुत की है जिनकी तपाराधना, ज्ञान-साधना एवं संयम-पालना अद्वितीय थी। □

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org